हिन्दी के दलित आत्मकथाकार

Pankaj Kumar Singh[1]*, Dr. Rajesh Kumar Niranjan[2]

[1] Research Scholar, Shri Krishna University, Chhatarpur M.P.

[2] Associate Professor, Shri Krishna University, Chhatarpur M.P.

सार - दलित साहित्य में कविता, कहानी, नाटक आदि साहित्यिक विधाओं की तरह आत्मकथाओं का एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी साहित्य में जहाँ आत्मकथा लिखने की परंपरा प्राचीन नहीं है, आधुनिक है, वहीं हिदी आत्मकथा में दलित आत्मकथा की यह परंपरा मराठी में लिखी गई डॉ. अम्बेडकर की आत्मकथा मी कसा झाले (मैं कैसे बना) की प्रेरणा और प्रभाव से हिंदी दलित साहित्य में आत्मकथा लेखन की शुरूआत हुई। प्राचीन समय से लेकर आधुनिक काल तक दलित चेतना किसी-न-किसी रूप में विद्यमान थी। लेकिन इसकी व्यापकता आधुनिक काल में आकर एक साकार रूप धारण करती है, जहाँ पर दलित समाज अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करता हुआ नजर आता है, तथा साथ ही अपने अधिकारों की माँग भी करता है।

कीवर्ड- हिन्दी, साहित्य, दलित, आत्मकथाकार।

---------------------------------x---------------------------------

परिचय

दलित साहित्य की अवधारणा बहुत प्राचीन है। दलित का अर्थ है, उत्पीड़ित और शोषित व्यक्ति। प्राचीन काल में जाति का आधार आर्य और गैर-आर्य थे। इसमें आर्य जाति को श्रेष्ठ माना जाता था, जबकि गैर-आर्य निम्न श्रेणी में आते थे। उसके बाद वर्ण व्यवस्था शुरू हुई, जो कर्म पर आधारित थी। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत समाज चार भागों में बँटा हुआ था-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वैदिक युग में निचली जातियों को चांडाल, मध्य युग में अछूत और ब्रिटिश काल में दलित वर्गों के रूप में नामित किया गया था। (1) स्वतंत्रता के बाद, उन्हें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में नामित किया गया। नाम कुछ भी हो, इस वर्ग की समस्याएं आज भी ज्वलंत समस्याओं के रूप में हमारे सामने हैं। सामाजिक व्यवस्था के कारण दलित सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी अनादर का पात्र बना रहता है। किसी भी चुनौती के सामने जाति हमेशा दलितों को बांटने और कमजोर करने का एक शक्तिशाली हथियार बन जाती है। जातिवाद के कारण फुले और अंबेडकर जैसे देशभक्तों पर उंगलियां उठाई गईं। समाज का यह वर्ग सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से पिछड़ा होने के कारण सदियों से घृणा, अवमानना और शोषण का शिकार रहा है।(2)

भाषा

“जूठन' आत्मकथाओं में भाषा अत्यंत महत्व रखती है। ओमप्रकाश ने इसे प्रथमपुरुष शैली में रचा है। शुरू से अंत तक कथानक में सर्वत्र मौजूद है। अत: लेखक ने आत्म शैली का ही प्रयोग रखा है। इससे प्रवाह में कहीं रूकावट नहीं आती। लेखकीय ईमानदारी से घटना की विश्वसनीयता बनी रहती है । लेखक ने पूरे कथानक में कई नाटकीय प्रसंग रखे हैं| वे कथा को ईमानदारी से प्रस्तुत करते हैं, ऐसा कहीं झूठा रंग देने या अतिशयोक्ति के लिए नहीं हुआ है। इस कथानक में चौधरी से लेकर बालक तक विभिन्न स्तर के पात्र हैं | स्वर्ण और दलित हर तरह के चरित्र हैं| उनकी भाषा लक्षणीय है। यद्यपि पूरी कथा खड़ी बोली में है। पर ओमप्रकाश के पिता या मां या चौधरी के व्यंग्यभरे वाक्यों की भाषा में लोक स्तर खूब सहज और समावेशी हुआ है! ओमप्रकाश की भाषा पर पकड़ गालियों के प्रयोग, भदेस स्थितियों के विवरण में संकोच अथवा अनावश्यक उग्रता नहीं मिलती । यथार्थ चित्रण के लिए जो -जो वर्णन जरूरी था, उसे उतना उघाड़ा है, उससे अधिक नहीं । 'सलार्म' प्रथा का घृणित रूप ओमप्रकाश ने संकेत में दिया है। उसी प्रकार दलितों के प्रति क्रूरता संबंधी संभाषण भी बहुत संक्षेप में है। (3) लेखक उनका संयत भाषा में संकेत भर देता है। यह

www.ignited.in

उनकी सशक्त शैली का संकेत है। पूरे कथानक में जगह-जगह लोक प्रचलित यथार्थ शब्दों का प्रयोग इस आत्म कथा को मार्मिक बना देता है ।

आत्मकथा की परिभाषा

आत्मकथा उस व्यक्ति द्वारा स्वयं या स्वयं लिखे गए व्यक्ति का जीवन रेखा है। ऑटो शब्द का अर्थ है, 'स्व।' इसलिए, आत्मकथा में उपन्यास के सभी तत्व शामिल हैं, लेकिन लेखक द्वारा स्वयं इसकी रचना या वर्णन किया गया है। वह अपने दम पर लिख सकते हैं या उनके लिए लिखने के लिए घोस्ट राइटर रख सकते हैं। एक आत्मकथा कथावाचक के चरित्र के स्केच को प्रस्तुत करती है, वह स्थान जहाँ वह पैदा हुआ है और लाया गया है, उसकी शिक्षा, कार्य, जीवन के अनुभव, चुनौतियाँ और उपलब्धियाँ। इसमें उनके बचपन, किशोर और वयस्कता की घटनाएं और कहानियां शामिल हो सकती हैं। (4)

- उपन्यास लिखने का उद्देश्य पाठकों को व्यक्ति और उसके जीवन के बारे में बताना और सूचित करना है जबकि आत्मकथा को व्यक्त करने के लिए लिखा जाता है, कथाकार के जीवन के अनुभवों और उपलब्धियों को व्यक्त करता है।
- आत्मकथाओं में ऐसी जानकारी होती है जो विभिन्न स्रोतों से समय-समय पर एकत्र की जाती है और इस प्रकार, यह पाठकों के लिए एक अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। दूसरी ओर, आत्मकथाएँ स्वयं विषय द्वारा लिखी जाती हैं, इसलिए, लेखक तथ्यों और अपनी सोच को अपने तरीके से प्रस्तुत करता है, इस प्रकार पाठकों को एक समग्र संकीर्ण और पक्षपाती परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है।

दलितों के उत्थान में लेखकों का योगदान

इतिहास गवाह है कि कई विद्वानों और समाज सुधारकों ने दलित वर्ग के विकास और उत्थान के लिए संघर्ष किया। महात्मा गांधी ने उन्हें 'हरिजन' कहा। स्वतंत्रता के बाद यद्यपि दलित वर्ग के विकास के लिए बहुत प्रयास किए गए, फिर भी यह वर्ग समाज के अन्य वर्गों के जीवन स्तर तक नहीं पहुंच पाया है। दलित समस्या के कारण अमानवीय व्यवहार के किस्से अक्सर लिखित में मिलते हैं। दलित वर्ग इस सामाजिक अन्याय और अपनी पहचान के लिए साहित्य के माध्यम से ही लड़ सकता है। दलित विचारधारा भारतीय समाज और साहित्य में एक शक्तिशाली सामाजिक आंदोलन के रूप में उभर रही है। (5)

आज का युग परिवर्तन का युग है। दलित साहित्य और दलित-पहचान पर जोर-शोर से और खुलकर बहस हो रही है, लेकिन फिर भी लेखकों और विद्वानों के अनुसार दलितों की मुक्ति का रास्ता तय किया गया है, कोई नहीं जानता। आज इस बात पर गहराई से विचार करने की जरूरत है कि दलितों के उत्थान के लिए कौन सा दृष्टिकोण अपनाया जाए, ताकि उसका असली रूप सामने आ सके और उसे सही तरीके से समझा जा सके। इस कार्य के लिए जहां समाज महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, वहीं सरकार और प्रशासन का भी यह दायित्व बनता है कि वह इस वर्ग के उत्थान में अपना भरपूर योगदान दें।

दलित आत्मकथाकारों में राजनैतिक - जागरुकता

"राजनीतिक सत्ता को चाबियों की चाबी" स्वीकार करने वाले डॉ.भीमराव अम्बेडकर दलितों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो का सूत्र दिया । उनके प्रथम सूत्र 'शिक्षित बनो' से दलितों में समझ बढ़ेगी, द्वितीय सूत्र के अनुसार "संगठन' से दलितों की बात सत्ता तक पहुँचेगी तथा तृतीय व अंतिम सूत्र के अनुसार संघर्ष करके अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकता है, किन्तु दलितों को अपना ध्यान पूजा- पाठ से हटाकर राजनीति की ओर केन्द्रित करना होगा, क्योंकि दलितों के शोषण के साथ-साथ सरकार द्वारा दी जा रही सुविधाएँ भी न के बराबर मिल रही हैं| यह सभी सुविधाएँ कमल के पत्ते पर ओस के कण के समान है जो स्थायी कम क्षणभंगुर ज्यादा है। इसलिए दलितों को सत्ता हाँथ में लेकर स्वयं शासनकत्ता बनना चाहिए। (6)

आज समाज में चारों ओर विषमता की बेलें तेजी से फैल रही हैं | मजदूर मेहनत करता है, किन्तु वह गरीबी का शिकार है। राजनीति हमसे समानता की बात करता है, समाज में मजदूर के पास न घर है, न वस्त्र है, न रोजगार है, न खाना और न ही समाज में सिर उठाकर

www.ignited.in

जीने की आजादी, तो यह कैसी समता? और कैसी समानता? यहाँ तो सिर्फ विषमता है जिस तोड़कर दलितों को मुक्ति दिलाना ही डॉ.भीमराव का मुख्य उद्देश्य था । वे भली-भाँति समझ चुके थे कि दलित व्यक्ति अंग्रेजों की गुलामी का शिकार होने के पूर्व सामाजिक गुलामी का शिकार है ।

दलित आत्मकथाकारों की भाषा और शिल्प

आत्मकथा "जो अनुभव किया गया है" से शुरू होती है। आत्मकथा केवल अतीत की तस्वीर नहीं है, बल्कि "जो सुना है, क्या देखा है और क्या रहा है" से - आत्मकथा जन्म नहीं लेती है। जिंदगी को जीने वाला खौफ हमेशा यादों में रहता है और यह आत्मकथा भी उसी का वर्णन है। किसी भी समाज विशेष के अध्ययन के लिए उस समाज द्वारा लिखे गए साहित्य, उस समाज से जुड़े अन्य समाजों का अध्ययन करना आवश्यक है, चाहे कितनी भी रचनाएँ ए द्वारा लिखी गई हों। इसका मतलब यह है कि दलित समाज की कल्पना सही मायने में तब हुई जब दलित समाज की कल्पना की गई थी। लेखकों ने अपना साहित्य लिखना शुरू किया। उनके दुख, दर्द, मुश्किलें, शोषण-ये सब विपरीत दिशा में थे। यदि दलित साहित्य न आया होता तो शायद ही किसी ने इस दुखद सत्य का अनुभव किया होता। अनेक विद्वानों द्वारा स्थापित मत यह है कि किसी भी देश की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों में काव्य का चित्र होता है। (7)

दलितों के प्रति षिक्षकों की मानसिकता

ब्राह्मण मानसिकता से पीड़ित स्कूली शिक्षकों के मन में भी दलितों के प्रति वैसी ही पूर्वधारणाएं और नफरत है, जैसी सामान्य उच्च जातियों में होती है। पढ़े-लिखे व्यक्ति की यह सोच शिक्षक-शिष्य और शिक्षा व्यवस्था पर सवालिया निशान लगाती है। दलित आत्मकथाओं में लेखकों ने शिक्षा व्यवस्था की नग्नता को उजागर किया है। वाल्मीकि ने 'जूठन' में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि शिक्षक समुदाय जातिगत भेदभाव की पूर्वाग्रही भावना से कैसे पीड़ित है, मैंने जो शिक्षकों का आदर्श रूप देखा, वह अभी भी मेरी स्मृति से मिटा नहीं है।

जब भी कोई आदर्श गुरु के बारे में बात करता है, तो मुझे याद आता है। वे सभी शिक्षक जो माँ-बहन को गाली देते थे। तीन दिन तक स्कूल का छात्र लगातार स्कूल में झाड़ू लगाता रहा, लेकिन स्कूल मास्टर को उस छात्र पर कोई दया नहीं आई। अगर कोई दलित शिक्षा प्राप्त करने का विचार लाता था, तब सवर्ण मानसिकता से ग्रसित शिक्षक दलितों को स्कूल की दहलीज से लौटा देते थे।सूरजपाल चौहान ने अपनी आत्मकथा 'तिर्सकृत' में संस्कृत शिक्षक वेदपाल शर्मा के बारे में लिखा है कि कैसे वे उन्हें जाति के वैभव की याद दिलाते थे। एक दिन, इशारा करते हुए सूरजपाल से उन्होंने कहा, अगर देश के सभी चुहड़-चमारों ने पांचवीं कक्षा में प्रवेश लिया, तो स्कूल की फीस अधिक थी, एक रुपये बारह आने। बच्चों की फीस देना माता-पिता की क्षमता से परे था। (8) बाबा ने प्रधानाध्यापिका से एक बड़ा अनुरोध किया कि वह फीस का भुगतान नहीं कर सकता। बड़ी मुश्किल से वह मान गई और कहा कि अगर उसने पढ़ाई में अच्छा नहीं किया तो उसे नौकरी से निकाल दिया जाएगा। बाबा ने दूर से ही प्रधानाध्यापिका के चरणों के पास सिर झुकाया, क्योंकि वह अछूत था और छू नहीं सकता था।

आत्मकथाकार और दलित आत्मकथाकार

हिन्दी औपन्यासिक परम्परा में यदि प्रेमचंद तथा उनके समकालीन लेखकों ने दलित चेतना को जगाया है तो स्वतंत्रता के पश्चात समकालीन लेखकों ने अपनी कथा-व्यथा को आधार बनाकर दलितों, शोषितों, पीड़ितों के हृदय में नया भावबोध भरकर नयी चेतना का संचार करता है और मानव जीवन के हर पहलुओं पर पैनी दृष्टि से अवलोकन के पश्चात् उसे कथारूप देता है, जिससे जीवन का कोई भी अंश अछूता नहीं रह जाता। 19वीं सदी के अंतिम दशक में सुधारवादी उपन्यास लेखन की श्रृंखला का आरम्भ किशोरी लाल गोस्वामी और लज्जाराम मेहता से होती है। किशोरी लाल गोस्वामी, कृत “अंगूठी का नगीना?, “माधव वा मदन मोहिनी” में दलित समाज पर विचार करते हुए स्पष्ट किया गया है कि यदि सवर्ण समाज पर दलित की परछाही भी पड़ जाए तो उनका यह लोक तो बिगड़ता ही था, शायद परलोक भी। इस प्रकार

www.ignited.in

की मानसिकता समाज में प्रचण्ड रूप से व्याप्त थी। उनका मानना था कि वर्णव्यवस्था के बने रहने से समाज में एकता स्थापित रहेगी। इसलिए वर्णव्यवस्था को श्रेष्ठ मानकर उसका समर्थन कर रहे थे। (9) लज्जाराम मेहता भी ऐसी ही व्यवस्था का समर्थन करते हुए दिखाई पड़ते हैं| "आदर्श हिन्दू" में उनका मानना है कि दलितों को अपने जातिगत पेशे को अपनाये रहना चाहिए, क्योंकि यदि सवर्ण समाज को कभी नाई, भंगी, चमार की आवश्यकता होगी तो वह कहाँ जाएगा? सवर्णों के यहाँ नौकरी कौन करेगा? घर की गंदगी कौन साफ करेग? इस प्रकार यहाँ वर्णवादी व्यवस्था की पुष्टि होती है। (10)

हिन्दी साहित्य के स्थापित आलोचकों के व्यवहार में दोहरे मापदण्डों को देखा जा सकता है, फिर भी वे माक्र्सवादी सामन्ती, प्रगतिशील परम्परावादी, गाँधीवादी व्यवस्था के पोषक बने रहते हैं । इनकी दृष्टि में निगला और तुलसीदास ही छाये रहते हैं। का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण रचनाधर्मिता के कन्द्रीय भाव को जानकर ही कोई निर्णय लेना चाहिए, किन्तु सत्य तो यह है, कि वह रचना कल्पना की विस्तृत ऊँचाई है। (11) यही कारण है कि ब्राह्मणवादी मानसिकता के रचनाकार हमेशा ही दलित साहित्य पर आरोप-प्रत्यारोप लगाते रहे हैं। हमें यह विचार कर लेना चाहिए कि सामन्ती विचारधारा का मूल्य क्या है? चाहे कोई लेखक, समीक्षक ही क्यों न हो। ब्राह्मणवाद और दलित साहित्य के सम्बन्ध में उनका क्या मत है? इसके गहन अध्ययन व चिंतन की आवश्यकता है, क्योंकि ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि "प्रेमचन्द की लगभग 300 कहानियों में मात्र दो ही कहानी ऐसी है, जिसमें दलित पीड़ा की सही अभिव्यक्ति हुई है- ठाकुर का कुआँ-1932, दूध का दाम-1934 इन कहानियों पर डॉ. भीमराव अम्बेडकर के "महाड़ आंदोलन" और "कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन" की वैचारिक छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इस प्रकार प्रेमचंद व उनका साहित्य अपने समय और समाज के काफी करीब है। प्रेमचंद विवादास्पद होते हुए भी विगत कुछ वर्षों में उन पर जितनी चर्चाएँ हुई हैं, आलोचना, तक-वितर्क और प्रतिवाद हुए हैं, उतने किसी अन्य लेखक के सम्बन्ध में नहीं हुआ। (12) यह कथन प्रेमचंद की लोकप्रियता को जगजाहिर करता है।

निष्कर्ष

भारतीय दलित साहित्य में मुख्यत: गाँव के बाहर के जीवन की कथा-व्यथा व्यक्त हुई है। भारतीय समाज के जीवन का एक उपेक्षित यही घटक इन लेखकों का विषय है। यह मानना पड़ेगा कि पारम्परिक साहित्य में जिस तरह दलित जीवन का चित्रण नहीं के बराबर हुआ है, उसी तरह से दलित साहित्य में सवर्ण के जीवन का चित्रण थोड़ा-बहुत दिखाई देता है। हिन्दी आत्मकथा, उपन्यास और कहानी में स्त्री अधिक प्रमाण में दिखाई देती है। सवर्ण पुरुष के जाल में फँसी हुई बलात्कृत अप्रमाणिक रूप से उसका चित्रण हुआ है। अन्य भारतीय भाषाओं में स्त्री का चित्रण केवल श्रमिक शोषित के रूप में हुआ है। लगभग सभी भारतीय भाषाओं में लेखकों ने अपने-अपने प्रदेश की परिनिष्ठित भाषा को नकारते हुए बोलचाल की भाषा में लेखन किया है, अपवाद हिन्दी के लेखक हैं। उन्होंने पूर्णतः हिन्दी भाषा का ही प्रयोग किया है।

संदर्भ

1. गुलशन दास और जी.ए. घनश्याम। एडिटर्स, वॉयस ऑफ द वॉयसलेस कॉन्सेप्ट्अलाइजिंग द मार्जिनलाइज्ड साइके, ऑथर्सप्रेस, (2012)।
2. एन, शांता नाइक। संपादक, दलित साहित्य हमारी प्रतिक्रिया, सरूप बुक पब्लिशर्स, (2012)।
3. स्ट्रैकुज़ी, एंड्रयू एम। द इंडेलिबल प्रॉब्लम: मुल्क राज आनंद एंड द प्लाइट ऑफ अनटचेबल। वेब 14 नवंबर (2011)।
4. कोलेकर, तानाजी. एन। "दलित अनुभव और साहित्यिक अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता।" इंडियन स्ट्रीम रिसर्च जर्नल, वॉल्यूम -1, फरवरी (2011)।
5. हरियाणा ठाकुर, दलित साहित्य का समाज शासत्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, (2010), पृष्ठ - 46
6. हरबीर सिंह रंधावा। संपादक, दलित साहित्य सामग्री, रुझान और चिंताएं, सरूपबुक पब्लिशर्स, (2010)।
7. सुभाष चन्द्र, दलित मुक्ति आंदोलन, आधार प्रकाशन पंचकूला, (2010), पृष्ठ - 45
8. यादव, सतीश. हिंदी के कलजयी उपन्यास: एक पुनर्मूल्यांकन (गोदान और रगदरबारी के संधार में), विकास प्रकाशन, (2010)।
9. चौधरी, सुतापा. "सिग्निफाइंग द सेल्फ: इंटरसेक्शन ऑफ क्लास, कास्ट एंड जेंडर इन

www.ignited.in

रवींद्रनाथ टैगोर की डांस ड्रामा चांडालिका।" 20 दिसंबर 2012। रूपकथा जर्नल 2.4 (2010)

10. कनाडे एस.एस. संपादक, विश्वभारती। ए मल्टीडिसिप्लिनरी नेशनल रेफरेड जर्नल वॉल्यूम-I, गैलेक्सी पब्लिकेशन्स, (2010)।

11. अग्रवाल, बीना और डॉ. नीता। संपादकों। भारतीय अंग्रेजी साहित्य में दलित चेतना का संदर्भ, यकिंग बुक्स, (2010)।

12. साहनी, भीष्म। "प्रेमचंद: ए शॉर्ट स्टोरी राइटर।" महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय का एक जर्नल, ममता कालिया द्वारा संपादित, वॉल्यूम -04 नई दिल्ली, जुलाई-सितंबर। (2009)।

Corresponding Author

Pankaj Kumar Singh*

Research Scholar, Shri Krishna University, Chhatarpur M.P.